

राम-लक्ष्मण-परशुराम संवाद

भावार्थ

नाथ संभुधनु भंजनिहारा, होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥
आयेसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥
सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरिकरनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेहि सिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा॥
सुनि मुनिबचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अवमाने॥
बहु धनुहीं तोरीं लरिकाई। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाई॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू॥
रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न सँभारा।
धनुही सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसारा॥

अर्थ - परशुराम के क्रोध को देखकर श्रीराम बोले - हे नाथ! शिवजी के धनुष को तोड़ने वाला आपका कोई एक दास ही होगा। क्या आज्ञा है, मुझसे क्यों नहीं कहते। यह सुनकर मुनि क्रोधित होकर बोले की सेवक वह होता है जो सेवा करे, शत्रु का काम करके तो लड़ाई ही करनी चाहिए। हे राम! सुनो, जिसने शिवजी के धनुष को तोड़ा है, वह सहस्रबाहु के समान मेरा शत्रु है। वह इस समाज को छोड़कर अलग हो जाए, नहीं तो सभी राजा मारे जाएँगे। परशुराम के वचन सुनकर लक्ष्मणजी मुस्कुराए और उनका अपमान करते हुए बोले- बचपन में हमने बहुत सी धनुहियाँ तोड़ डालीं, किन्तु आपने ऐसा क्रोध कभी नहीं किया। इसी धनुष पर इतनी ममता किस कारण से है? यह सुनकर भृगुवंश की ध्वजा स्वरूप परशुरामजी क्रोधित होकर कहने लगे - अरे राजपुत्र! काल के वश में होकर भी तुझे बोलने में कुछ होश नहीं है। सारे संसार में विख्यात शिवजी का यह धनुष क्या धनुही के समान है?।

लखन कहा हँसि हमरें जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना॥
का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नयन के भोरें॥
छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥
बालकु बोलि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहि मोहा॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही॥
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा॥

मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीसकिसोरा।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोरा।।

अर्थ - लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा- हे देव! सुनिए, हमारे जान में तो सभी धनुष एक से ही हैं। पुराने धनुष के तोड़ने में क्या हानि-लाभ! श्री रामचन्द्रजी ने तो इसे नवीन के धोखे से देखा था। परन्तु यह तो छूते ही टूट गया, इसमें रघुनाथजी का भी कोई दोष नहीं है। मुनि! आप बिना ही कारण किसलिए क्रोध करते हैं? परशुरामजी अपने फरसे की ओर देखकर बोले- अरे दुष्ट! तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना। मैं तुझे बालक जानकर नहीं मारता हूँ। अरे मूर्ख! क्या तू मुझे निरा मुनि ही जानता है। मैं बालब्रह्मचारी और अत्यन्त क्रोधी हूँ। क्षत्रियकुल का शत्रु तो विश्वभर में विख्यात हूँ। अपनी भुजाओं के बल से मैंने पृथ्वी को राजाओं से रहित कर दिया और बहुत बार उसे ब्राह्मणों को दे डाला। हे राजकुमार! सहस्रबाहु की भुजाओं को काटने वाले मेरे इस फरसे को देखा। अरे राजा के बालक! तू अपने माता-पिता को सोच के वश न करा। मेरा फरसा बड़ा भयानक है, यह गर्भों के बच्चों का भी नाश करने वाला है।

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥
इहाँ कुम्हड़बतिया कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥
भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधैं पापु अपकीरति हारें। मारतहूँ पा परिअ तुम्हारें॥
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥
जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीरा।
सुनि सरोष भृगुबंसमनि बोले गिरा गंभीरा॥

अर्थ - लक्ष्मणजी हँसकर कोमल वाणी से बोले- अहो, मुनीश्वर आप अपने को बड़ा भारी योद्धा समझते हैं। बार-बार मुझे कुल्हाड़ी दिखाते हैं। फूँक से पहाड़ उड़ाना चाहते हैं। यहाँ कोई कुम्हड़े की बतिया (बहुत छोटा फल) नहीं है, जो तर्जनी (अंगूठे की पास की) अँगुली को देखते ही मर जाती हैं। कुठार और धनुष-बाण देखकर ही मैंने कुछ अभिमान सहित कहा था। भृगुवंशी समझकर और यज्ञोपवीत देखकर तो जो कुछ आप कहते हैं, उसे मैं क्रोध को रोककर सह लेता हूँ। देवता, ब्राह्मण, भगवान के भक्त और गो- इन पर हमारे कुल में वीरता नहीं दिखाई जाती है। क्योंकि इन्हें मारने से पाप लगता है और इनसे हार जाने पर अपकीर्ति होती है, इसलिए आप मारें तो भी आपके पैर ही पड़ना चाहिए। आपका एक-एक वचन ही करोड़ों वज्रों के समान है। धनुष-बाण और कुठार तो आप व्यर्थ ही धारण करते हैं। इन्हें देखकर मैंने कुछ अनुचित कहा हो, तो उसे हे धीर

महामुनि! क्षमा कीजिए। यह सुनकर भृगुवंशमणि परशुरामजी क्रोध के साथ गंभीर वाणी बोले।

कौसिक सुनहु मंद यह बालकु। कुटिल कालबस निज कुल घालकु॥
भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू॥
काल कवलु होइहि छन माहीं। कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा॥
लखन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा॥
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥
नहिं संतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
बीरब्रती तुम्ह धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा॥
सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु॥

अर्थ - हे विश्वामित्र! सुनो, यह बालक बड़ा कुबुद्धि और कुटिल है, काल के वश होकर यह अपने कुल का घातक बन रहा है। यह सूर्यवंश रूपी पूर्ण चन्द्र का कलंक है। यह बिल्कुल उदण्ड, मूर्ख और निडर है। अभी क्षण भर में यह काल का ग्रास हो जाएगा। मैं पुकारकर कहे देता हूँ, फिर मुझे दोष नहीं देना। यदि तुम इसे बचाना चाहते हो, तो हमारा प्रताप, बल और क्रोध बतलाकर इसे मना कर दो। लक्ष्मणजी ने कहा- हे मुनि! आपका सुयश आपके रहते दूसरा कौन वर्णन कर सकता है? आपने अपने ही मुँह से अपनी करनी अनेकों बार बहुत प्रकार से वर्णन की है। इतने पर भी संतोष न हुआ हो तो फिर कुछ कह डालिए। क्रोध रोककर असह्य दुःख मत सहिए। आप वीरता का व्रत धारण करने वाले, धैर्यवान और क्षोभरहित हैं। गाली देते शोभा नहीं पाते। शूरवीर तो युद्ध में शूरवीरता का प्रदर्शन करते हैं, कहकर अपने को नहीं जनाते। शत्रु को युद्ध में उपस्थित पाकर कायर ही अपने प्रताप की डींग मारा करते हैं।

तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा॥
सुनत लखन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुबादी बालकु बधजोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरनिहार भा साँचा॥
कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥
खर कुठार मैं अकरुन कोही। आगें अपराधी गुरुद्रोही॥
उतर देत छोड़उँ बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें॥
गाधिसूनु कह हृदयँ हंसि मुनिहि हरिअरइ सूझ।
अयमय खाँड़ न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ॥

अर्थ - आप तो मानो काल को हाँक लगाकर बार-बार उसे मेरे लिए बुलाते हैं। लक्ष्मणजी के कठोर वचन सुनते ही परशुरामजी ने अपने भयानक फरसे को सुधारकर हाथ में ले लिया और बोले - अब लोग मुझे दोष न दें। यह कड़वा बोलने वाला बालक मारे जाने के ही योग्य है। इसे बालक देखकर मैंने बहुत बचाया, पर अब यह सचमुच मरने को ही आ गया है। विश्वामित्रजी ने कहा- अपराध क्षमा कीजिए। बालकों के दोष और गुण को साधु लोग नहीं गिनते। परशुरामजी बोले - तीखी धार का कुठार, मैं दयारहित और क्रोधी और यह गुरुद्रोही और अपराधी मेरे सामने- उत्तर दे रहा है। इतने पर भी मैं इसे बिना मारे छोड़ रहा हूँ, सो हे विश्वामित्र! केवल तुम्हारे प्रेम)से, नहीं तो इसे इस कठोर कुठार से काटकर थोड़े ही परिश्रम से गुरु से उद्धार हो जाता। विश्वामित्रजी ने हृदय में हँसकर कहा - परशुराम को हरा ही हरा सूझ रहा है (अर्थात् सर्वत्र विजयी होने के कारण ये श्री राम-लक्ष्मण को भी साधारण क्षत्रिय ही समझ रहे हैं), किन्तु यह फौलाद की बनी हुई खाँड़ है, रस की खाँड़ नहीं है जो मुँह में लेते ही गल जाए। खेद है, मुनि अब भी बेसमझ बने हुए हैं, इनके प्रभाव को नहीं समझ रहे हैं।

कहेउ लखन मुनि सीलु तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा॥
माता पितहि उरिन भए नीकें। गुर रिनु रहा सोचु बड़ जीकें॥
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बड़ बाढ़ा॥
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥
सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचउँ नृपदोही॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहि के बाढ़े॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सयनहिं लखनु नेवारे॥
लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु॥

अर्थ - लक्ष्मणजी ने कहा- हे मुनि! आपके प्रेम को कौन नहीं जानता? वह संसार भर में प्रसिद्ध है। आप माता-पिता से तो अच्छी तरह उद्धार हो ही गए, अब गुरु का ऋण रहा, जिसका जी में बड़ा सोच लगा है। वह मानो हमारे ही मत्थे काढ़ा था। बहुत दिन बीत गए, इससे ब्याज भी बहुत बढ़ गया होगा। अब किसी हिसाब करने वाले को बुला लाइए, तो मैं तुरंत थैली खोलकर दे दूँ। लक्ष्मणजी के कड़वे वचन सुनकर परशुरामजी ने कुठार संभाला। सारी सभा हाय-हाय! करके पुकार उठी। लक्ष्मणजी ने कहा- हे भृगुश्रेष्ठ! आप मुझे फरसा दिखा रहे हैं? पर हे राजाओं के शत्रु! मैं ब्राह्मण समझकर बचा रहा हूँ। आपको कभी रणधीर बलवान् वीर नहीं मिले हैं। हे ब्राह्मण देवता ! आप घर ही में बड़े हैं। यह सुनकर 'अनुचित है, अनुचित है' कहकर सब लोग पुकार उठे। तब श्री रघुनाथजी ने इशारे से लक्ष्मणजी को रोक दिया। लक्ष्मणजी के उत्तर से, जो आहुति के समान थे, परशुरामजी के क्रोध रूपी अग्नि को बढ़ते देखकर रघुकुल के सूर्य श्री रामचंद्रजी जल के समान शांत करने वाले वचन बोले।

कवि परिचय

तुलसीदास

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के बाँदा जिले के राजापुर गाँव में सन 1532 में हुआ था। तुलसी का बचपन संघर्षपूर्ण था। जीवन के प्रारंभिक वर्षों में ही माता-पिता से उनका बिछोह हो गया। कहा जाता है की गुरुकृपा से उन्हें रामभक्ति का मार्ग मिला। वे मानव-मूल्यों के उपासक कवि थे। रामभक्ति परम्परा में तुलसी अतुलनीय हैं।

प्रमुख कार्य

रचनाएँ - रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, दोहावली, कृष्णगीतावली, विनयपत्रिका।

कठिन शब्दों के अर्थ

1. भंजनिहारा - भंग करने वाला
2. रिसाड़ - क्रोध करना
3. रिपु - शत्रु
4. बिलगाउ - अलग होना
5. अवमाने - अपमान करना
6. लरिकार्ई - बचपन में
7. परसु - फरसा
8. कोही - क्रोधी
9. महिदेव - ब्राह्मण
10. बिलोक - देखकर
11. अर्भक - बच्चा
12. महाभट - महान योद्धा
13. मही - धरती
14. कुठारु - कुल्हाड़ा
15. कुम्हड़बतिया - बहुत कमजोर
16. तर्जनी - अंगूठे के पास की अंगुली
17. कुलिस - कठोर
18. सरोष - क्रोध सहित
19. कौसिक - विश्वामित्र
20. भानुवंस - सूर्यवंश
21. निरंकुश - जिस पर किसी का दबाव ना हो।
22. असंकू - शंका सहित

23. घालुक - नाश करने वाला
24. कालकवलु - मृत
25. अबुधु - नासमझ
26. हटकह - मना करने पर
27. अछोभा - शांत
28. बधजोगु - मारने योग्य
29. अकरुण - जिसमे करुणा ना हो
30. गाधिसूनु - गाधि के पुत्र यानी विश्वामित्र
31. अयमय - लोहे का बना हुआ
32. नेवारे - मना करना
33. ऊखमय - गन्ने से बना हुआ
34. कृसानु - अग्नि

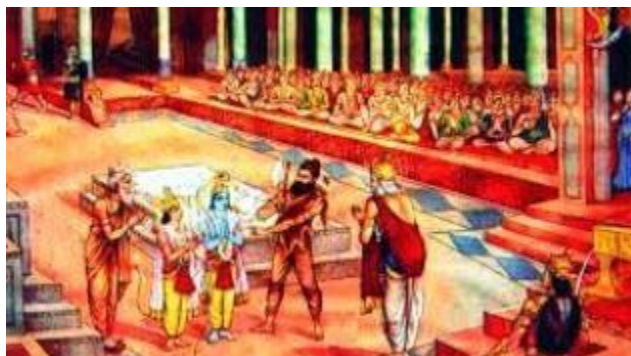
पाठ का सार

राम-लक्ष्मण-परशुराम संवाद

शिवधनुष टूटने के साथ सीता स्वयंवर की खबर मिलने पर परशुराम जनकपुरी में स्वयंवर स्थान पर आ जाते हैं। हाथ में फरसा लिए क्रोधित हो धनुष तोड़ने वाले को सामने आने, सहस्रबाहु की तरह दंडित होने और न आने पर वहाँ उपस्थित सभी राजाओं को मारे जाने की धमकी देते हैं। उनके क्रोध को शांत करने के लिए राम आगे बढ़कर कहते हैं कि धनुष-भंग करने का बड़ा काम उनका कोई दास ही कर सकता है। परशुराम इस पर और क्रोधित होते हैं कि दास होकर भी उसने शिवधनुष को क्यों तोड़ा। यह तो दास के उपयुक्त काम नहीं है। लक्ष्मण परशुराम को यह कहकर और क्रोधित कर देते हैं कि बचपन में शिवधनुष जैसे छोटे कितने ही धनुषों को उन्होंने तोड़ा, तब वे मना करने क्यों नहीं आए और अब जब पुराना और कमजोर धनुष श्रीराम के हाथों में आते ही टूट गया तो क्यों क्रोधित हो रहे हैं।

परशुराम जब अपनी ताकत से धृती को कई बार क्षत्रियों से हीन करके ब्राह्मणों को दान देने और गर्भस्थ शिशुओं तक के नाश करने की बात बताते हैं तो लक्ष्मण उन पर शूरीयों से पाला न पड़े जाने का व्यंग्य करते हैं। वे अपने कुल की परंपरा में स्त्री, गाय और ब्राह्मण पर वार न करके अपकीर्ति से बचने की बात करते हैं तो दूसरी तरफ स्वयं को पहाड़ और परशुराम को एक फूँक सिद्ध करते हैं। ऋषि विश्वामित्रा परशुराम के क्रोध को शांत करने के लिए लक्ष्मण को बालक समझकर माफ करने का आग्रह करते हैं। वे समझाते हैं कि राम और लक्ष्मण की शक्ति का परशुराम को अंदाजा नहीं है। अंत में लक्ष्मण के द्वारा कही गई गुरुऋण उतारने की बात सुनकर वे अत्यंत क्रुद्ध

होकर फरसा सँभाल लेते हैं। तब सारी सभा में हाहाकार मच जाता है और तब श्रीराम अपनी मधुर वाणी से परशुराम की क्रोध रूपी अग्नि को शांत करने का प्रयास करते हैं।



काव्यांशों की व्याख्या

नाथ संभुधनु भंजनिहारा।
होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥
आयेसु काह कहिअ किन मोही।
सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही॥
सेवकु सो जो करै सेवकाई
अरिकरनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेहि सिवधनु तोरा।
सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा।
न त मारे जैहहिं सब राजा॥
सुनि मुनिबचन लखन मुसुकाने।
बोले परसुधरहि अवमाने॥
बहु धनुही तोरी लरिकाई।
कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाई॥
येहि धनु पर ममता केहि हेतू।
सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू॥
रे नृपबालक कालबस बोलत तोहि न सँभारा।
धनुही सम त्रिपुरारिधनु बिदित सकल संसारा॥

व्याख्या

स्वयंवर सभा में उपस्थित होकर जब परशुराम यह जानना चाहते हैं कि शिवधनुष को किसने तोड़ा है तो श्रीराम विनयपूर्वक अपने स्वाभाविक कोमल वचनों से उन्हें शांत करने की चेष्टा करते हैं। श्रीराम कहते हैं कि हे नाथ! आपके किसी दास के अलावा भला और कौन हो सकता है जो शिवजी के धनुष को तोड़ सकता है? इस प्रकार वे अपने आप को उनका सेवक कहते हैं, किंतु उनका क्रोध फिर भी शांत नहीं होता। तो उन्हें खुश करने के लिए श्रीराम पुनः कहते हैं कि यदि आज्ञा हो तो आप जो कुछ कहना चाहते हैं, मुझसे कहें। इस पर परशुराम अत्यंत क्रोधित होकर बोले- ‘सेवक तो वही होता है जो सवो का कई कार्य करे, किंतु जो सेवक शत्रु समान कार्य करता है, उसके साथ तो लड़ाई करनी पड़ेगी। सुन लो राम! जिसने भी शिवधनुष तोड़ा है, सहस्रबाहु के समान ही मेरा शत्रु है। वह तुरंत समाज (सभा) से अलग बाहर हो जाए अन्यथा यहाँ उपस्थित सभी राजा मारे जाएंगे।’ परशुराम के इन क्रोधपूर्ण वचनों को सुनकर लक्ष्मण मकुसराने लगे। अब लक्ष्मण ने व्यंग्यपूर्वक कहा, ‘हे गोसाईं! बचपन में खेल-खेल में न जाने कितनी धनुहियाँ तोड़ डालीं, तब तो आपको गुस्सा नहीं आया, पर अब ऐसी कौन-सी खास बात हो गई जिसके कारण आप इतने क्रोधित हो रहे हैं? आखिर इस धनुष की क्या विशेषता है जिसके कारण आपको इससे इतना प्रेम और लगाव है?’ लक्ष्मण के व्यंग्यपूर्ण वचनों को सुनकर भृगुवंश की ध्वजा स्वरूपपरशुराम अत्यंत क्रोधित होकर बोले- ‘अरे राजकुमार! तू काल के वश में होकर इस प्रकार की बात बोल रहा है। तुझे तो बोलने का होश भी नहीं है, तू अपने आप को सँभाल। भगवान शंकर का धनुष समस्त विश्व में प्रसिद्ध है और तू इसकी तुलना सामान्य धनुहियों के साथ कर रहा है? अरे! अबोध बालक, यह कोई सामान्य धनुष नहीं है।’

विशेष

1. यह काव्यांश अवधी भाषा में लिखित है।
2. इस चापौई में शुरू में शांत रस आरंभ बाद में रादैर रस का प्रयोग हुआ है।
3. काह कहिअ किन, सेवकु सो, करि करिअ, सहसबाहु सम सो, बिलगाउ बिहाइ में अनुप्रास अलंकार की छटा दिखाई देती है।
4. ‘सहसबाहु सम सो रिपु मोरा’ और ‘धनुही सम त्रिपुरारिधनु’ में उपमा अलंकार है।

लखन कहा हसि हमरे जाना।
सुनहु देव सब धनुष समाना।।
का छति लाभु जून धनु तोरें।
देखा राम नयन के भोरें।।

छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू।
मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू ।।
बोले चितै परसु की ओरा।
रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा।।
बालकु बोलि बधैं नहि तोही।
केवल मुनि जइ जानहि मोही।।
बाल ब्रह्मचारी अति कोही।
बिस्वबिदित क्षत्रियकुल द्रोही।।
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही।
बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही।।
सहसबाहुभुज छेदनिहारा।
परसु बिलोकु महीपकुमारा।।
मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीसकिसोरा।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोरा।।

व्याख्या

जब लक्ष्मण ने परशुराम से हँसकर कहा, हे दवे ! सुनिए, हमारे लिए तो सभी धनुष समान हैं। पुराने और कमजोर धनुष के टूटने से क्या दोष और क्या लाभ? रामचंद्र जी ने तो इसे नया समझकर छुआ था और छूते ही वह धनुष टूट गया, उन्हें तो दृष्टि का धेखा हो गया, भला इसमें उनका क्या दोष? अतएव हे मुनिवर! आप व्यर्थ ही क्रोधित हो रहे हैं।

अब परशुरामजी ने अपने फरसे की ओर देखते हुए कहा - ‘अरे शठ! तूने मेरे स्वभाव के बारे में नहीं सुना है। मैं तो भला तुझे बालक समझकर नहीं मार रहा और तू मुझे निरा सीध-सादा मुनि समझ रहा है। तो सुन ले - मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ और अत्यंत क्रोधी हूँ। सारा संसार जानता है कि मैं क्षत्रियों का घोर शत्रु हूँ। मैंने इस पृथ्वी को क्षत्रिय-शून्य कर दिया, फिर इस क्षत्रिय-रहित पृथ्वी को ब्राह्मणों को दे दिया’ कहने का तात्पर्य यह है कि परशुराम ने अपनी शक्ति से असंख्य क्षत्रियों का नाश करके पृथ्वी पर ब्राह्मणों का आधिपत्य स्थापित कर दिया। आगे परशुराम लक्ष्मण को संबोधित करते हुए कहते हैं कि, ‘हे राजकुमार! सहस्रबाहु की भुजाओं को काट डालने वाले मेरे इस फरसे की ओर शरा देखो। मेरा फरसा गर्भस्थ शिशु को नष्ट करने की क्षमता रखता है। अतः हे राजपुत्रा! तू अपने माता-पिता को चिंतित मत कर, उन्हें सोचने के लिए मजबूर मत कर।’

विशेष

1. इसमें अवधी भाषा का और चौपाई छंद का प्रयोग हुआ है।

2. इसमें मुख्य रूप से रौद्र रस की प्रधानता है।
3. इसमें तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है।
4. 'सठ सुनेहि सुभाउ', 'बालकु बोलिबधौ', 'बाल बह्मचारी', 'भुजबल भूमि भूप' तथा 'बिपुल बार' में अनुप्रास अलंकार की निराली छटा है।